अध्याय – प्रथम

शोध परिचय

1.1 शोध एक परिचय

1.2 प्रस्तावना एवं विषय प्रवेश

1.3 शोध के उद्देश्य

1.4 शोध की परिकल्पनाएँ

1.5 शोध प्रविधि

1.6 शोध का क्षेत्र एवं सीमाएँ

1.7 अध्ययन की रूपरेखा

1.8 संभावित योगदान

अध्याय
1

1.1 अनुसन्धान का अर्थ [MEANING OF RESEARCH]

'अनुसन्धान' शब्द का प्रयोग अब ज्ञान की प्रत्येक शाखा के गहन अध्ययन के लिए होने लगा है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी 'अनुसन्धान' शब्द लोगों के लिए अब अपरिचित नहीं है। अनुसन्धान की प्रकृति के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व इसी अर्थ में प्रयुक्त होने वाले दो अन्य शब्दों को भी देख लेना उचित होगा। ये शब्द हैं 'शोध' और 'अन्वेषण'। 'शोध' शब्द एक प्रकार की शुद्धि, संस्कार या संशोधन का अर्थ देता है। इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्रदत्तों के विश्लेषण, सारणीयन और कुछ-कुछ स्पष्टीकरण के लिए 'शोध' शब्द का प्रयोग कर तो सकते हैं किन्तु इससे व्यापक निष्कर्षों तक पहुँचने की प्रक्रिया का आभास नहीं मिलता है।

अनुसन्धान की प्रक्रिया में वैज्ञानिक निरीक्षण अन्य प्रमुख तत्व है। सामान्य रूप से निरीक्षण अनुसन्धान की परिधि से बाहर है। वैज्ञानिक निरीक्षण सदा क्रमबद्ध, सोद्देश्य एवं सुनियोजित होता है। अनुसन्धान की परिधि में ऐसा ही निरीक्षण आता है। केवल निरीक्षण तक ही अनुसन्धान सीमित नहीं है। इसमें अगला प्रमुख तत्व है समस्या का समाधान खोजना। यह समाधान अनुमानित न होकर अन्वेषण का परिणाम होगा। अनुसन्धान की समूची प्रक्रिया एक तार्किक प्रक्रिया है। प्रक्रिया होने के नाते अनुसन्धान की प्रक्रिया में विशिष्टता और गहनता है। किन्तु यह तार्किक प्रक्रिया कोरे शाब्दिक तर्कों पर आधारित न होकर प्रदत्तों की ठोस भूमि पर आधारित है।

अनुसन्धान के क्षेत्र में अग्रणी विश्वविद्यालयों एवं विशिष्ट संस्थानों के अनुसन्धान सम्बन्धी नियमों से अनुसन्धान की सीमा का एक प्रकार से अनुमान लगाया जा सकता है। इन सभी नियमों का विस्तृत अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि अनुसन्धान में सफल व्यक्ति वह कहा जा सकता है जिसने -

(1) किसी नए सत्य की खोज की हो,

(2) पुराने सत्यों को नए ढंग से प्रस्तुत किया हो, अथवा

(3) प्रदत्तों में व्याप्त नए सम्बन्धों का स्पष्टीकरण किया हो।

इस दृष्टि से अनुसन्धान क्षेत्र के अन्तर्गत केवल नए सत्यों एवं नये सिद्धान्तों की खोज ही नहीं है, वरन् पुराने सत्यों एवं पुराने सिद्धान्तों को नया कलेवर देना, पुराने नियमों को युगानरूप नवीनता प्रदान करना, प्रदत्तों, एवं तथ्यों का नये सिरे से स्पष्टीकरण करते हुए उनमें व्याप्त अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण करना भी सम्मिलित है।

अनुसन्धान के उद्देश्य

अनुसन्धान के चार उद्देश्य हैं :

(1) **भूत तथा वर्तमान की घटनाओं की स्थिति ज्ञात करना**(To determine the status of phenomena - past and present);

(2) **चुनी गई घटनाओं की प्रकृति, गठन तथा प्रक्रिया की विशेषताओं को ज्ञात करना**(To ascertain the nature, composition and processes that characterize selected phenomena);

(3) **कुछ घटनाओं के विकास का इतिहास, होने वाले परिवर्तन तथा वर्तमान स्थिति को ज्ञात करना** (To trace the growth development history, change and status of certain phenomena);

(4) **कुछ घटनाओं अथवा चारों में कार्य-कारण सम्बन्ध को ज्ञात करना**(To study the cause and effect relationship between certain phenomena) ।

अनुसन्धान की सामान्य प्रकृति [GENERAL NATURE OF RESEARCH]

1. अनुसन्धान एक उद्देश्यपूर्ण सुव्यवस्थित बौद्धिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा किसी सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक समस्या के समाधान का प्रयास किया जाता है।
2. अनुसन्धान द्वारा या तो किसी नए तथ्य, सिद्धान्त, विधि या वस्तु की खोज की जाती है अथवा प्राचीन तथ्य, सिद्धान्त, विधि या वस्तु में परिवर्तन किया जाता है।
3. अनुसन्धान एक तर्कपूर्ण तथा वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया है। इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वास्तविक आँकड़ों पर आधारित एवं तर्कपूर्ण होते हैं तथा व्यक्तिगत पक्षपात से मुक्त होते हैं।
4. अनुसन्धान चिन्तन की एक सुव्यवस्थित एवं परिष्कृत विधि है जिसके अन्तर्गत किसी समस्या के समाधान के लिए विशिष्ट उपकरणों एवं प्रक्रियाओं का प्रयोग होता है।

5. अनुसन्धान की प्रक्रिया में प्राथमिक अथवा माध्यमिक स्त्रोत से प्राप्त आँकड़ों से नए ज्ञान को प्राप्त किया जाता है।
6. इसके अन्तर्गत जटिल घटनाक्रम को समझने के लिए विश्लेषण-विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विश्लेषण के लिए परिकल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण किया जाता है।
7. जहाँ तक सम्भव हो, अनुसन्धान की प्रक्रिया में आँकड़ों के विश्लेषण में परिमाणात्मक विधि का प्रयोग किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ तक सम्भव हो, आँकड़ों के विश्लेषण में सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है।
8. अनुसन्धान द्वारा प्राप्त ज्ञान सत्यापित किया जा सकता है क्योंकि इसके अन्तर्गत किया गया निरीक्षण नियन्त्रित एवं वस्तुनिष्ठ होता है।
9. अनुसन्धान एक अनोखी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ज्ञान के प्रकाश एवं प्रसार के लिए सुव्यवस्थित प्रयास होता है।
10. अनुसन्धान कार्य के लिए वैज्ञानिक अभिकल्पों का प्रयोग किया जाता है।
11. आँकड़ों को प्राप्त करने के लिए विश्वसनीय एवं वैध उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।
12. सभी अनुसन्धानों में अभिलेखन एवं प्रतिवेदन सावधानी से किया जाता है।

सामाजिक विज्ञानों में वैज्ञानिक अनुसन्धान की स्थिति

वैज्ञानिक अनुसन्धान के सम्बन्ध में एक स्मरणीय तथ्य यह है कि इसका सबसे अधिक उपयोग भौतिक - विज्ञानों में होता है। वैसे सामाजिक विज्ञानों में भी वैज्ञानिक अनुसन्धान पर्याप्त मात्रा में हो रहे हैं। फिर भी, यह कहना पड़ेगा कि वैज्ञानिक अनुसन्धान जिस उच्च कोटि के भौतिक-विज्ञानों में हो रहे हैं, सामाजिक विद्वानों में वह स्थिति अभी विकासशील स्तर पर ही है। इसका कारण यह है कि सामाजिक विज्ञानों की विषय-सामग्री का स्वरूप बहुत जटिल व चंचल है तथा उनमें कठोर प्रायोगिक पद्धति द्वारा अध्ययन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

अनुसन्धान की प्रमुख विशेषताएँ (Main Characteristics of Research)

(1) अनुसन्धान एक वैज्ञानिक अन्वेषण पद्धति है। इस आधार पर अनुसन्धान एक व्यवस्थित, नियन्त्रित, निरपेक्ष, वस्तुनिष्ठ, गहन तथा आनुभविक(Empirical) अध्ययन होता है।

(2) इसका उद्देश्य एक दी गई स्पष्ट तथा सीमित समस्या से सम्बन्धित नवीन तथ्यों तथा सामान्य नियमों की खोज करना होता है। साथ ही उससे सम्बन्धित पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों का नवीनतम यन्त्रों, उपकरणों तथा प्रविधियों द्वारा सत्यापन(Verification)

स्रोत- 1. सामाजिक अनुसंधान एक परिचय : गुप्ता आर शर्मा : पृ. 3

करना भी होता है। अतः अनुसन्धान एक अत्यन्त उद्देश्यपूर्ण, धैर्यपूर्ण तथा विवेकपूर्ण प्रक्रम होता है।

(3) अनुसन्धान में सम्बन्धित समस्या के अध्ययन का आधार ऐसी परिकल्पना(Hypothesis) अथवा परिकल्पनात्मक तर्क-वाक्य (Hypothetical Propositions) होते हैं, जिनसे आनुभविक (Empirical) तथा मात्रात्मक (Quantitative) अध्ययन में सुविधा हो।

(4) इसमें सम्बन्धित आँकड़ों का विश्लेषण कठोर वैज्ञानिक तथा सांख्यिकीय पद्धतियों के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार अनुसन्धान का स्वरूप कुशल, विशिष्ट तथा वस्तुनिष्ठ होता है।

(5) इसमें प्राप्त परिणामों तथा सम्बन्धों की पुनरावृत्ति(Replication) इस उददेश्य से बार-बार की जाती है, ताकि सुनिश्चित तथा सुसंगत (Consistent) निष्कर्ष उपलब्ध हो सके।

(6) अनुसन्धान पर आधारित ज्ञान में एक प्रकार की क्रमबद्धता, निरन्तरता(Continuity) तथा एकता (Unity) अन्तर्निहित रहती है इस प्रकार का ज्ञान कठोर वैज्ञानिक मापदण्ड पर परिशुद्ध (Precise), वैध (Valid) तथा विश्वसनीय (Reliable) रहता है।

(7) अनुसन्धान के प्रक्रम तथा प्राप्त निष्कर्षों को नियमबद्ध रूप से एक प्रतिवेदन(Report) के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, ताकि उस क्षेत्र के आगामी अनुसन्धानों में उनका सन्दर्भ सहज रूप से उपलब्ध हो सके। इस आधार पर अनुसन्धान के प्रतिवेदन का प्रकाशन भी अनुसन्धान प्रक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

अनुसन्धान प्रक्रम (Process) के विभिन्न चरण

अनुसन्धान प्रक्रम का स्वरूप सभी विज्ञानों में एक समान नहीं होता। भौतिक विज्ञान के अनुसन्धानों में इसका प्रक्रम सामाजिक विज्ञानों में होने वाले अनुसन्धानों के प्रक्रम से भिन्न रहता है। सामान्य : सामाजिक विज्ञानों में अनुसंधान के निम्नलिखित चरण(Steps) हाते हैं-

(1) विषय का चयन (Selection of Topics)

(2) सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण (Survey of the Related Literature),

(3) अध्ययन हेतु समस्या का उठाना (Raising the Problem of Study):
(i) अध्ययन समस्या का युक्ति - संगत आधार (Rationale) प्रस्तुत करना,
(ii) अध्ययन से सम्बन्धित संप्रत्यों (Concepts), निर्मितों (Constructs)

स्रोत- 2 से 7 सामाजिक अनुसंधान एक परिचय : गुप्ता आर शर्मा : पृ. 4 से 8

(iii) अध्ययन के उददेश्यों (Objectives) को बताना,

(iv) अध्ययन के अंगों को प्रश्नवाचक रूप में प्रस्तुत करना,

(iv) अध्ययन के क्षेत्र को स्पष्टतः सीमाबद्ध (Delimit) करना।

(4) अध्ययन के लिए एक अथवा एक से अधिक परिकल्पनाओं की रचना(Formulation of Hypothesis or more than one Hypothesis),

(5) अनुसन्धान अभिकल्प (Research Design) अथवा विधि - तन्त्र (Methodology) का चयन तथा प्रतिदर्श प्रक्रिया (Sampling Procedure) की व्याख्या।

(6) आँकड़ों का संकलन (Data Collection)

(7) आँकड़ों का व्यवस्थापन तथा विश्लेषण (Organizational and Analysis of Data),

(8) परिकल्पना का सत्यापन (verification),

(9) निष्कर्ष तथा सामान्यीकरण (Conclusion and Generalization),

(10) प्रतिवेदन प्रस्तुतीकरण (Presentation of Report) ।

संक्षेप में, सर्वप्रथम, अनुसन्धान में अनुसन्धानकर्ता को उस क्षेत्र तथा विषय का चयन करना होता है, जिसमें वह अनुसन्धान करना चाहता है। इस अवस्था(Stage) में अनुसन्धानकर्ता प्रायः इस स्थिति में नहीं होता, जबकि उसे अध्ययन सम्ब्धी समस्या का स्पष्ट ज्ञान हो।

दूसरे चरण में, अनुसन्धानकर्ता को समस्या-सम्बन्धित पूर्व अनुसन्धानों का सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण करना होता है, ताकि वह यह समझ सके कि पूर्व-अनुसन्धानों में क्या कमियाँ रही हैं। क्या उनमें प्रविधि (Methodology) सम्बन्धी कोई दोष है? क्या उनमें से किसी एक अनुसम्बन्ध के निष्कर्षों में कोई दोष है? या कोई अन्य अभाव(Deficiency) है? सम्भवतः इन्हीं अभावों को अनुसन्धानकर्ता अपने अनुसन्धान में दूर करना चाहेगा।

तीसरे चरण में, इस प्रकार अनुसन्धानकर्ता पूर्व-अनुसन्धानों के सर्वेक्षण के आधार पर एक समस्या को उठाता है, और उसके युक्ति-संगत आधार को प्रस्तुत करता है इसके साथ ही, उन सैद्धान्ति निर्मितों (Constructs) तथा संप्रत्ययों की भी स्पष्ट व्याख्या करता है। उददेश्यों(Objectives) तथा उसके क्षेत्रों को भी स्पष्ट व सीमित करना होता है।

चौथे चरण में, अनुसन्धानकर्ता को उठाई गई समस्या के आधार पर एक ऐसी उपयुक्त परिकल्पना (Hypothesis) की रचना करनी होती है जिसका आनुभविक (Empirical) तथा मात्रात्मक (Quantitative) अध्ययन सम्भव हो और जो उठाई गई समस्या का एक समुचित उत्तर हो।

पाँचवें चरण में, अनुसन्धानकर्ता को अनुसन्धान से सम्बन्धित एक ऐसे उपयुक्त अधिकल्प (Design) का चयन करना होता है जिससे सम्बन्धित समस्या का कठोर वैज्ञानिक नियन्त्रण (Control) के आधार पर गहन अध्ययन हो सके। इसी चरण में आँकड़ों के संकलन के लिए विधि-तन्त्र (Methodology) का चयन भी करना होता है और कभी-कभी विधि -तन्त्र के समस्या के स्वरूप के अनुसार विकसित भी करना पड़ता है।

छठे चरण में, आँकड़ों का संकलन करना होता है, तथा सातवें चरण में, उनका व्यवस्थापन (Organization) व विश्लेषण किया जाता है। आठवें चरण में, परिकल्पना का सत्यापन उपयुक्त सांख्यिकीय पद्धति द्वारा किया जाता है। नौवें चरण में, परिकल्पना के स्वीकृत अथवा अस्वीकृत किये जाने के आधार पर उपयुक्त निष्कर्ष निकाले जाते हैं, तथा सामान्यीकरण(Generalization) किया जाता है।

अन्तिम चरण में सम्पूर्ण अनुसन्धान प्रक्रम के आधार पर एक नियमबद्ध, संक्षिप्त तथा स्पष्ट प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत की जाती है, जिससे इस अनुसन्धान का सन्दर्भ आगामी अनुसन्धानों के लिए सरलतापूर्वक उपलब्ध हो सके और इस दृष्टिकोण से अनुसन्धान के प्रतिवेदन का प्रकाशन (Publication) भी अनुसन्धान का एक प्रमुख अंग है, इससे अनुसन्धान के निष्कर्षों के प्रसारण (Communication) तथा पुष्टीकरण (Corroboration) में सहायता मिलती है।

अनुसन्धान का महत्व (IMPORTANCE OF RESEARCH)

(i) अनुसन्धान मानव ज्ञान भण्डार को विस्तृत करता है (Research advances the frontiers of Human Knowledge)- अनुसन्धान के आधार पर नित नवीन वैज्ञानिक तथ्यों, सामान्य नियमों तथा सिद्धान्तों की रचना होती रहती है, तथा पूर्व-स्थापित सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति तथा पुष्टि नवीन उपकरणों तथा नवीनतम विकसित प्रविधियों द्वारा होती रहती है। इस कारण अनुसन्धान से मानव ज्ञान-भण्डार दिन-प्रतिदिन विकसित तथा विस्तृत होता रहता है।

(ii) अनुसन्धान विभिन्न विज्ञानों की प्रगति की शक्तिशाली कुन्जी है (Research is a Powerful key of the Advancement of Different science)-अनुसन्धान से न केवल भौतिक विज्ञानों - भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जन्तुविज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान में ही प्रगति हुई है, बल्कि इससे अन्य विज्ञानों - विशेषतः सामाजिक विज्ञानों, जैसे शिक्षाशास्त्र, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान के क्षेत्रों में भी महान् क्रान्तिकारी प्रगति तथा अपार उन्नति हुई है।

(iii) अनुसन्धान व्यावहारिक समस्याओं के समाधान का एक प्रबल यन्त्र हैResearch is a Potent Tool for the solution of Practical Problems)-अनुसन्धान से न केवल सैद्धान्तिक

ज्ञान ही विकसित होता है, इससे अनेक व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में भी उल्लेखनीय सहायता प्राप्त हुई है। आधुनिक जीवन के सामाजिक, औद्योगिक, शैक्षिक, सैनिक, मनोवैज्ञानिक तथा चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में अनुसन्धान की अत्यन्त महत्वपूर्ण उपयोगिता सिद्ध हुई है। इसी कारण सामाजिक अनुसन्धान, औद्योगिक अनुसन्धान, शैक्षिक अनुसन्धान व ऐसे ही अन्य अनुसन्धानों का विस्तार तथा प्रसार मानव जीवन के हर क्षेत्र में निरन्तर रूप से बढ़ता जा रहा है।

(iv) अनुसन्धान प्रशासक का मार्गदर्शक है (Research is the Guide of Administrator)- आधुनिक काल में प्रशासन का कार्य जीवन के हर क्षेत्र में अत्यन्त विषम तथा विस्तृत होता जा रहा है, जिसके कारण प्रशासक तथा नीति निर्धारक (Policy Maker) का काम बहुत ही जटिल हो गया है। सामाजिक, शैक्षिक, औद्योगिक व ऐसे ही अन्य क्षेत्रों की समस्याओं, भावनाओं, अभिवृत्तियों तथा प्रक्रियाओं का जब तक ठीक-ठीक ज्ञान प्रशासक को नहीं होता, तब तक वह प्रशासन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण निर्णयों के लेने तथा नीति-निर्धारण के काम में सफल व कुशल सिद्ध नहीं होता। सम्बन्धित आँकड़ों के अभाव में उसके मस्तिष्क में एक प्रकार का अन्धकार सा (Blackout) रहता है, परन्तु अनुसन्धान से आवश्यक जानकारी प्राप्त होने पर ही उसे नीति-सम्बन्धी वह प्रकाश मिलता है, जिससे अनेक नीति-सम्बन्धी कार्यों में उसका मार्गदर्शन होता है।

(V) अनुसन्धान ने अनेक पूर्वाग्रहों के निदान तथा निवारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है (Research has played an Important Role in the Diagnosis and Elimination of different Prejudices)- अनुसन्धानों के आधार पर अनेक प्राचीन पूर्वाग्रहों के मूलरूप को समझने तथा उसके उन्मूलन में महत्वपूर्ण सहायता मिली है। अनुसन्धान से ही पाश्चात (Western) तथा पूर्वी (Oriental) सभ्यताओं के बीच की दीवारों, भ्रान्तियों, मूल्यों तथा आदर्शों को समझने में सहायता मिली है। इससे न केवल प्राचीन पूर्वाग्रह ही कम और समाप्त हुए हैं, पारस्परिक सहयोग, सदभावना तथा समर्थन में भी वृद्धि हुई है।

(vi) अनुसन्धान से मानव व्यक्तित्व का अपार बौद्धिक विकास हुआ है (Research has led to the Unparalleled Intellectual Development of Human Personality)- नवीन अनुसन्धानों से न केवल विभिन्न विज्ञानों का ही विकास हुआ है, इनसे मानव व्यक्तित्व का भी अपार बौद्धिक विकास हुआ है। नवीन तथ्यों की जानकारी से अज्ञात के प्रति केवल उसकी जिज्ञासा तथा ज्ञान-पिपासा ही शान्त व सन्तुष्ट नहीं होती, बल्कि उसकी चिन्तन-शक्ति, कल्पना-शक्ति, विश्लेषण-शक्ति तथा सर्जनात्मक-शक्ति का भी अत्यधिक विकास होता है। इस प्रकार अनुसन्धान ने मानव व्यक्तित्व को बौद्धिक रूप से विकसित करने में एक अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

1.2 प्रस्तावना एवं विषय प्रवेश

किसी अर्थव्यवस्था की शक्ति और उसके विकास का पता उसकी वित्तीय प्रणाली से लगता है,क्योंकि वित्तीय प्रणाली ही उस अर्थव्यवस्था का मूल केन्द्र होती है। भारतीय वित्तीय प्रणाली अत्यन्त प्राचीन है। साहूकार, महाजनों की वित्तीय व्यवस्था में वस्तु विनिमय से लेकर कौड़ियों में व्यवसाय हुआ। समय परिवर्तन के साथ विकसित समाज में बैंकिंग व्यवस्था का पदार्पण धातु मुद्राओं व कागजी मुद्राओं का स्वरूप लेकर हुआ। अंग्रेजों के शासनकाल में भारतीय बैंकिंग का स्वरूप केवल निजी व संस्थागत था, जो विशेष वर्ग तक ही सीमित था। स्वतन्त्रता पश्चात् स्थिति में विभिन्न असमानताओं को दूर करने, एक स्तर पर लाने और नियन्त्रण रखने के लिए बैंकिंग विनिमय अधिनियम वर्ष 1949 लागू किया गया। तत्पश्चात् महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए। वर्ष 1969 में 14 बड़े और वर्ष 1980 में 6 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया।[1] इसके कारण बैंकिंग का उद्देश्य वर्ग बैंकिंग से हटकर जन बैंकिंग हुआ।

पिछले कुछ दशकों में भारतीय बैंकिंग उद्योग विभिन्न चरणों से गुजरा है, जिसमें बैंकिंग उद्योग का विकास वाणिज्यिक बैंकों की उन्नति, सुदूर अंचल तक बैंकों की पहुँच, निजी क्षेत्रों के बैंकों का प्रवेश तथा विदेशी बैंकों का प्रवेश शामिल है।

बैंकिंग विकास के लिए बैंकों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में दीर्घकालीन, मध्यकालीन तथा अल्पकालीन ऋण उपलब्ध कराए गए। कालान्तर में बैंकों द्वारा ऋणों की पुनर्वापसी का अनुपात कम होता गया तथा अनार्जक या गैर निष्पादक या गैर निष्पादक आस्तियों के रूप में बैंकों का रुपया उलझता गया। आज भारत में बैंकों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या गैर निष्पादक के प्रबन्धन की है। हालांकि पिछले कुछ वर्षों के दौरान सकल अग्रिमों के प्रतिशत के रूप में गैर निष्पादक आस्तियों का हिस्सा कुछ कम हुआ है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मानकों से तुलना करने पर यह अभी भी अत्यधिक है। प्रारम्भ में बैंकें गैर निष्पादक आस्तियों के सम्बन्ध में जागरूक नहीं थीं, जितना ध्यान बैंकों द्वारा इस संवेदनशील विषय की ओर दिया जाना चाहिए था, उतना नहीं दिया गया। विशेष तौर पर **बासेल समिति** तथा **नरसिम्हम समिति** की सिफारिशों के बाद से बैंकों द्वारा इस विषय पर विशेष ध्यान दिया गया। इसके लिए बैंकों द्वारा लोक अदालत, भारतीय रिजर्व बैंक व अन्य बैंकों की

स्रोत- 2. वार्षिक पत्रिका : भारतीय अर्थव्यवस्था : प्रतियोगिता दर्पण वर्ष 2012

एकमुश्त जमा योजनाएँ तथा समझौता प्रस्ताव आदि द्वारा प्रयास किए गए। इन प्रयासों के परिणाम भी अनुकूल आए। जिन ऋणों को बैंकों ने डूबत मान लिया था, उनमें से कुछ की वसूली हुई।

बैंकों में पाई जाने वाली मुख्य तीन जोखिमों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है-

1. ऋण जोखिम- ऋण जोखिम किसी ऋणी अथवा प्रतिपक्ष द्वारा उधार, व्यापार अथवा किसी वित्तीय लेन-देन सम्बन्धी किसी अनुबन्ध के दायित्वों को पूरा न करने की इच्छा अथवा अयोग्यता के कारण उत्पन्न होता है। यह जोखिम मुख्य रूप से लेन-देन जोखिम, डिफॉल्ट जोखिम तथा पोर्टफोलियों जोखिम का सम्मिश्रण होता है। यह जोखिम विभिन्न बाह्य एवं आन्तरिक कारणों से उत्पन्न होता है। बाह्य कारणों में विदेशी विनिमय दरों में उतार-चढ़ाव, विभिन्न व्यापार प्रतिबन्ध, आर्थिक स्वीकृतियाँ, सरकारी नीतियाँ, वस्तुओं के मूल्यों में व्यापक परिवर्तन इत्यादि सम्मिलित है, जबकि आन्तरिक कारणों में ऋण नीतियों में परिवर्तन, प्रशासन की कमी, ऋण अधिकारियों द्वारा ऋण-साख सीमा की परिभाषा का अपर्याप्त निर्धारण, ऋणी की आर्थिक स्थिति के मूल्यांकन में कमी, ऋण पुनर्निरीक्षण पद्धति का अभाव और ऋण स्वीकृति-पश्चात् एवं वास्तविक उत्पादकता का अभाव सम्मिलित है।

2. बाजार जोखिम- बाजार सम्बन्धी विभिन्न घटकों में परिवर्तन के कारण जो जोखिम उत्पन्न होता है, उन्हें इस श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकता है। इनमें ब्याज दरों में परिवर्तन, इक्विटी व वस्तुओं के मूल्यों में परिवर्तन आदि सम्मिलित है। बासेल समिति ने बाजार मूल्यों में परिवर्तन के कारण आर्थिक चिट्ठे एवं इससे बाहर की मदों से हुई हानि को बाजार जोखिम कहा है। यह जोखिम समस्त बैंकिंग उद्योग को प्रभावित करता है। बाजार जोखिम प्रबन्ध किसी बैंक की तरलता, ब्याज दर, विदेशी विनिमय तथा इक्विटी के मूल्यों के प्रबन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है, ताकि बैंक की व्यावसायिक ऋण नीति का उचित प्रबन्धन हो सके।

3. परिचालनात्मक जोखिम- बैंकों में प्रभावी आन्तरिक प्रक्रिया में कमी, मानवीय त्रुटियाँ, तकनीकी भूलों, वैधानिक अवरोध, धोखाधड़ी एवं बाह्य घटनाओं के कारण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होने वाले जोखिमों को परिचालनात्मक जोखिम कहा जा सकता है। बैंकों की अनुषंगी कम्पनियों के व्यवसाय से उत्पन्न जोखिम को भी इसमें शामिल किया जाता है। इस प्रकार, इस श्रेणी के अन्तर्गत मानवीय प्रक्रिया सम्बन्धी, प्रबन्धन सम्बन्धी, प्रणाली सम्बन्धी, व्यवसाय सम्बन्धी तथा बाह्य जोखिमों को सम्मिलित किया जा सकता है।

भारतीय बैंकों में जोखिम प्रबन्ध : एक अनिवार्यता

जोखिम प्रबन्धन (Risk Management)

जोखिम को सामान्य तौर पर इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि अनपेक्षित घटनाओं की संभावना, जिससे संगठन को हानि हो सकती है। गणितीय परिभाषा के अनुसार – मानक विचलन के परिप्रेक्ष्य में कालान्तर में संभावित परिणामों के चलायमान होने की डिग्री को जोखिम कहते हैं अर्थात् यह गणितीय मध्य से विचलन का मापक है।

वित्तपोषण के संबंध में ऋणियों के चूककर्ता होने की स्थिति में संभावित हानि को, जोखिम प्रीमियम के माध्यम से उत्पादों के पर्याप्त मूल्यांकन द्वारा सुरक्षित किया जाता है। अनपेक्षित हानि होने पर इसे बैंक द्वारा वहन किया जाता है, जिसका विपरीत प्रभाव बैंक की पूंजी अथवा आय पर पड़ता है। इसलिये संभावित हानियों को रक्षित कोष और प्रावधानों द्वारा तथा अप्रत्याशित हानि को आवश्यक पूंजी आवंटन द्वारा सुरक्षित किया जाता है। इसीलिये पूंजी पर्याप्तता अनुपात बनाये रखने की आवश्यकता महसूस की गई।

बैंकिंग में जोखिम अन्तर्निहित और अपरिहार्य होता है। धारणा जोखिम को टालने की नहीं अपितु जोखिम प्रबंधन की होती है। यह सर्वमान्य है कि जितनी ज्यादा जोखिम होगी, उसका प्रतिफल भी उतना ही उच्च होगा। तद्नुसार सभी बैंकों ने अपने व्यवसाय की सुरक्षा और सुदृढ़ता सुनिश्चित करने के लिये जोखिम प्रबन्धन नीतियाँ तैयार की हैं। व्यापार बाह्य जोखिम प्रतिफल की गणना करने की तकनीक को जोखिम समायोजित निष्पादन मापन कहते हैं।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने इसकी अनुमति दी है क्योंकि तुलन–पत्र की स्थिति और बैंक के आकार, कार्यों की जटिलताओं में विविधता के कारण प्रत्येक बैंक अपना स्वयं का जोखिम प्रबंधन प्रारूप निर्धारित कर सकें।

जोखिमों के प्रकार

1. वित्तीय जोखिम
2. बाजार जोखिम
3. परिचालनगत जोखिम

वित्तीय जोखिम– बैंकों में यह जोखिम, वित्तपोषण से संबंधित शर्तों को ऋणी द्वारा असमर्थता अथवा असम्मति के कारण पूर्ण न किये जाने के कारण उत्पन्न होता है। यह लेन–देन जोखिम हो सकता है, जो व्यष्टि स्तर पर शर्तों को पूर्ण न किये जाने के कारण उत्पन्न होता है अथवा विभागीय जोखिम हो सकता है जो शीर्ष स्तर पर किसी एक अथवा ऋणी अथवा ऋणियों के समूह पर अनावश्यक वित्तपोषण केन्द्रित किये जाने के कारण होता है।

वित्तीय जोखिम प्रबंधन के उपाय

1. प्रतिपादन सीमा – विवेकाधिकार सीमाएँ – व्यक्तिगत ऋणियों के लिये 15 प्रतिशत और समूह ऋणियों के लिये 40 प्रतिशत और समूह व्दारा की गई आधारभूत परियोजनाओं के लिये 10 प्रतिशत अतिरिक्त।

2. उत्पादों के मूल्य निर्धारण हेतु अंक प्रारूप।

3. स्वीकृतियों की बहुस्तरीय समीक्षा/नवीनीकरण।

4. विभागीय प्रबंधन – उद्योग विशेष गुणात्मक प्रस्ताव जैसे, वृद्धि, चयनात्मक वृद्धि, धारण, संविदा इत्यादि।

बाजार जोखिम

बाजार जोखिम को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि बाजार की परिवर्तनीयता के कारण हानि की आशंका।

1. ब्याज दर जोखिम – बाजार में ब्याज दर परिवर्तन के कारण जब बैंक को हानि की जोखिम हो। इस जोखिम के कारण है – आस्तियों एवं देयताओं में संतुलन ना होना, विभिन्न परिपक्वताओं वाली तुलन–पत्र बाह्य मदें, निर्धारित देय तिथि के पूर्व ऋण का पुनर्भुगतान अथवा जमाराशियों का परिपक्वता पूर्व आहरण, विभिन्न बेंचमार्क जैसे बीपीएलआर, आधार दर, लाइबर, कॉल मनी दर आदि के आधार पर आस्तियों और देयताओं का मूल्य निर्धारण।

2. विदेशी विनिमय जोखिम : किसी अवधि में जब बैंक के पास खुली स्थिति हो, विनिमय दर की प्रतिकूल परिस्थितियों से ये जोखिम उत्पन्न होता है।

3. इक्विटी मूल्य जोखिम : बैंक द्वारा धारित इक्विटियों के मूल्य में प्रतिकूल परिवर्तन के कारण ये जोखिम उत्पन्न होती है।

4. तरलता जोखिम : जमाराशियों और आस्तियों की परिपक्वता पद्धति में असंतुलन के कारण उत्पन्न होता है।

परिचालनगत जोखिम

भारतीय रिज़र्व बैंक व्दारा परिचालनगत जोखिम को इस प्रकार परिभाषित किया गया है – वह जोखिम जो बाजार अथवा वित्तीय जोखिम नहीं है अथवा वह जोखिम जो पद्धति, तकनीक अथवा विभिन्न प्रकार की मानवीय त्रुटियों के कारण उत्पन्न होता है। बेसल समिति ने इसे परिभाषित किया है कि आंतरिक प्रणाली, मानव अथवा पद्धति के अपर्याप्त अथवा असफल होने अथवा बाह्य घटनाओं के कारण होने वाला जोखिम है।

1. मानव जोखिम– कर्मचारियों की क्षमता, अभिप्रेरणा, प्रशिक्षण अथवा कौशल में कमी होना।

2. प्रणाली जोखिम– उचित योजना एवं नियंत्रण का अभाव और धोखाधड़ी में स्टाफ शामिल होने पर।

3. तकनीकी जोखिम– पद्धति के असफल होने, कार्यक्रम तैयार करने और डाटा के संप्रेषण में त्रुटि होने पर।

4. विधिक जोखिम– दस्तावेजों में कमी.त्रुटि होने, संविदा.अनुबंध के अप्रभावी होने, दावे दायर होने, बैंक के नियमों और शर्तों का उल्लंघन होने पर।

5. प्रतिष्ठा जोखिम– संस्था का नकारात्मक प्रचार होने पर।

जोखिम प्रबंधन

जोखिम प्रबन्धन में शामिल प्रक्रियाएँ निम्नानुसार हैं–

अ. जोखिम की पहचान

ब. जोखिम का आंकलन.परिमापन

स. जोखिम नियंत्रण और

द. जोखिम अनुवर्तन

उपर्युक्त विवेचन से भारतीय बैंकिंग उद्योग में जोखिम प्रबन्धन की अनिवार्यता सिद्ध होती है, क्योंकि जोखिम का प्रबन्धन न होने के कारण बैंकों को विभिन्न प्रकार की हानि उठानी पड़ती है, जिससे उनकी लाभदायकता यहाँ तक कि उनके अस्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में,

यद्यपि जोखिम प्रबन्ध की आवश्यकता को काफी पूर्व अनुभव किया जाता रहा है, लेकिन 90 के दशक के पूर्वार्द्ध में बैंकिंग सुधारों के सम्बन्ध में गठित विभिन्न समितियों के सुझावों पर गौर करते हुए तथा विगत कुछ वर्षों में बैंकिंग उद्योग के समक्ष गैर-निष्पादक आस्तियों (एन.पी.ए.) की समस्या, सरकार द्वारा समय-समय पर घोषित ऋण माफी योजना, ऋणियों द्वारा ऋण वापसी में जानबूझकर अनुबन्ध का खण्डन कर ऋण एवं ब्याज की रकम न लौटाना आदि घटनाओं ने बैंकिंग उद्योग को इस स्थिति में पहुँचा दिया है, जिससे 'जोखिम प्रबन्धन की आवश्यकता अब जोखिम प्रबन्धन की अनिवार्यता' बन गई है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्ययन इन्हीं चिन्ताओं को ध्यान में रखकर तैयार किया गया है। इसका प्रमुख उद्देश्य स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा प्रदान किये गये ऋणों तथा अग्रिमों की जानकारी प्राप्त करना तथा उनका विश्लेषण करना तथा वसूल किये गये ऋण एवं अग्रिमों का तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निष्कर्ष निकालना साथ ही बैंक की गैर-निष्पादक आस्तियों का विश्लेषण करना एवं वर्तमान संदर्भ में इन आस्तियों की नवीनतम प्रवृत्तियों में आय परिवर्तनों का कार्यकारण सम्बन्ध स्थापित करना है।

1.3 शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध प्रबंध के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं-

1. **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा प्रदान किए गए ऋण तथा अग्रिमों की जानकारी प्राप्त करना-** स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में ऋण व अग्रिम प्रदान किये हैं। जो बैंक का प्रमुख कार्य है। बैंक को अधिकतम आय इनके प्रदान करने पर ब्याज तथा बट्टे से प्राप्त होती है। ऋण के प्रयोग के कारण ही बैंक की पूँजी को गतिशीलता प्राप्त होती है और व्यावसायिक गतिविधियों को आर्थिक मदद मिलने से समाज का आर्थिक एवं सामाजिक विकास होता है।
2. **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा वसूल किए गए ऋण एवं अग्रिमों की जानकारी प्राप्त करना-** बैंक द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में प्रदान किये गये ऋण व अग्रिमों की वसूली विभिन्न माध्यमों से की जाती है जिनमें मुख्यतः अवैधानिक और वैधानिक उपाय शामिल किये गये हैं। ऋणों की निम्न वसूली बैंक के लिये एक मुख्य समस्या है। यदि बैंक निम्न वसूली करता है तो बैंक की गैर-निष्पादक आस्तियों में निरंतर वृद्धि होती जाती है।

3. **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर तथा रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की ऋण एवं अग्रिम सम्बन्धी नीति का अध्ययन करना**-स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा वसूल किये गये ऋण व अग्रिमों के सम्बन्ध में बैंक ने एक निर्धारित नीति का निर्धारण किया है। इसके तहत ऋणों व अग्रिमों से प्राप्त नकद मूल्य का अध्ययन गैर-निष्पादक आस्तियों के संचय के आधार पर किया जाता है। इसी प्रकार रिजर्व बैंक ऑफ इण्डियाँ ने भी भारत की समस्त राष्ट्रीयकृत बैंकों एवं निजी बैंकों के लिये भी ऋण एवं अग्रिम सम्बन्धी नीति की घोषणा की है। जिसके आधार पर बैंक ऋण एवं अग्रिमों के सम्बन्ध में अपनी नीति निर्धारित करते हैं।
4. अग्रिम प्रदान करने व वसूल करने सम्बन्धी बैंक की प्रक्रिया का अध्ययन करना तथा इस कार्य में बैंक को होने वाली विभिन्न कठिनाइयों का अध्ययन कर आवश्यक सुझाव देना।
5. **गैर निष्पादक आस्तियों के प्रबन्धन के सम्बन्ध में स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की स्थिति का अध्ययन करना**- यहाँ पर बैंक का मुख्य उद्देश्य गैर-निष्पादक आस्तियों को न्यूनतम रखना है ताकि बैंक के जोखिम में न वृद्धि हो। साथ ही गैर-निष्पादक आस्तियों के होने पर वर्तमान आर्थिक परिप्रेक्ष्य में इनका कुशल प्रबन्ध करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर** ने बड़ी कुशलता से पूर्ण की है। जिसका विश्लेषण अध्याय सप्तम में किया गया है।
6. **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की गैर निष्पादक आस्तियों की नवीन प्रवृत्तियों का अध्ययन करना**- इस उद्देश्य के अध्ययन का महत्व इसमें है कि वर्तमान देश की आर्थिक व्यवस्था के संदर्भ में राष्ट्रीय आय को ध्यान में रखकर बैंक की गैर-निष्पादक आस्तियों की नवीनतम प्रवृत्तियों में क्या परिवर्तन हो रहा है और इन परिवर्तनों से राष्ट्रीय आय तथा बैंक की जोखिम में क्या प्रभाव पड़ता है। इसका विश्लेषण किया गया है।

1.4 परिकल्पनाएँ

अनुसंधान समस्या के चयन और निरूपण के बाद, परिकल्पना(ओं) का निरूपण अनुसंधान प्रक्रिया में अगला महत्वपूर्ण चरण होता है। परिकल्पना को समस्या के समाधान के लिए सुझाए गए 'एक प्रयोगात्मक विवरण'' के रूप में अथवा किसी परिघटना की व्याख्या के रूप में परिभाषित किया

जाता है (एरी एवं सहयोगी, 1985) यह चरण अनुसंधान अध्ययन में निहित समस्या और तर्क को स्थापित करता है। वे प्रश्न जिनकी रूपरेखा अनुसंधानकर्ता ने उत्तर देने के लिए बनाई है, को सामान्यतः परिकल्पना के रूप में माना जाता है जिसका प्रमाण के आधार पर परीक्षण किया जाता है। परिकल्पना का निर्धारण प्रारूपिक रूप से संबंधित साहित्य के निहितार्थों की ओर अन्वेषण के तहत समस्या के नियमनकारी तर्क की सहायता से किया जाता है।

परिकल्पना का महत्व

यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि परिकल्पनाएँ सभी अनुसंधानों विशेष रूप से, समस्या की पड़ताल की आरंभिक अवस्थाओं के लिए आवश्यक नहीं होती हैं और ये नहीं मानना चाहिए कि परिकल्पना को विकसित करने की असफलता आवश्यक रूप से वैज्ञानिक अभिविन्यास की कमी का संकेत है। यद्यपि, परिकल्पना को ऐसे पूर्वानुमान के रूप में माना जा सकता है जिसका उपलब्ध प्रयोग सिद्ध प्रमाण के लिए परीक्षण करने पर विचार किया जा सकता है। इसलिए ये सुझाया गया है कि परिकल्पना का उपयोग ऐसी धुरी के रूप में करना चाहिए जिसके इर्द-गिर्द अन्वेषण घूमता है, जिससे अन्वेषण के क्षेत्र को निश्चित लक्ष्य तक सीमित किया जा सकता है और उन प्रेक्षणों का भी निर्धारण किया जा सकता है जिन्हें लेना है और जिन्हें नजरअंदाज करना है।

अच्छी परिकल्पना की कुछ मौलिक विशेषताएं होती हैं। हम उनमें से कुछ को निम्न प्रकार से बता सकते हैं।

(i) दिशा प्रदान करनाः परिकल्पना अनुसंधान को दिशा प्रदान करती है और अप्रासंगिक साहित्य के पुनरावलोकन और निरर्थक अथवा अत्यधिक आँकड़ों को एकत्रित करने से रोकती है। ये आपको ''प्रासंगिकता'' और ''संगठन'' दोनों की दृष्टि से जानकारी को वर्गीकृत करने में सक्षम बनाती है। यह आवश्यक है, क्योंकि दिया गया तथ्य एक परिकल्पना के लिए प्रासंगिक और दूसरी के लिए अप्रासंगिक हो सकता है, अथवा वह पहली परिकल्पना के संदर्भ में एक वर्गीकरण श्रेणी का हो सकता है और दूसरी के लिए पूर्णतः भिन्न वर्गीकरण का हो सकता है। अतः परिकल्पना उन प्रासंगिक आँकड़ों को एकत्रित करने को सुनिश्चित करता है जो समस्या के कथन से उत्पन्न होने वाले प्रश्नों के उत्तर देने के लिए आवश्यक हो। उदाहरण के लिए, 'अनुसंधान समस्या' विकास और जीवनयापन के स्तर का अनुसूचित जातियों और जनजातियों पर प्रभाव'' में अनुसंधानकर्ता यह परिकल्पना बना सकता है- जितना अधिक विकास होगा, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के बीच जीवनयापन का स्तर

उतना ही अधिक होगा। अनुसंधानकर्ता विकास के सूचकों और अनुसूचित जातियों और जनजातियों के जीवन स्तर के बारे में आँकड़े एकत्रित करेगा।

(ii) परिकल्पना परीक्षण योग्य होनी चाहिए ःपरिकल्पना को इस प्रकार बताया जाना चाहिए कि वह अनुसंधान के लिए उपयोग किए गए उपायों के बीच संभावित अंतर अथवा संभावित संबंध को बताए। अनुसंधानकर्ता को ऐसी किसी परिकल्पना को नहीं बताना चाहिए जिसके लिए उसके पास ये मानने का कोई कारण न हो कि उसका परीक्षण अथवा मूल्यांकन बिना किसी पूर्वाग्रह से किया जा सकता है। परिकल्पनाएं परिवर्तियों के बीच के संबंधों का पूर्वानुमान होती हैं। इनका परीक्षण प्रयोगसिद्ध रूप से करना चाहिए।

(iii) परिकल्पना संक्षिप्त और स्पष्ट होनी चाहिए ः परिकल्पना को स्पष्ट और संक्षिप्त रूप से बताया जाना चाहिए । यह पाठक के लिए समस्या को समझना और अनुसंधानकर्ता के लिए उसका परीक्षण करना आसान बना देता है। वक्तव्य का संभावित संबंध के बारे में संक्षिप्त कथन होना चाहिए।

अनुसंधान में परिकल्पना के महत्व की परख करने के लिए कुछ प्रमुख पहलुओं को देखना चाहिए। एक अच्छी परिकल्पना में निम्नलिखित लक्ष्य होने चाहिए ः

(i) ज्ञात तथ्यों और सिद्धान्तों के अनुरूप होना चाहिए और पूर्व में अज्ञात आँकड़ों का पूर्वानुमान अथवा अनुमान लगाने में सक्षम होना चाहिए।

(ii) आँकड़ों को सरल शब्दों में समझाने में सक्षम होना चाहिए;

(iii) अनुसंधान समस्या में सम्मिलित जटिलताओं और अवधारणाओं के आधार पर सरलतम संभव शब्दों में बताया जाना चाहिए और

(iv) इस प्रकार बताया जाना चाहिए कि इसका सत्य अथवा असत्य होने के लिए परीक्षण किया जा सके जिससे अनुभवजन्य अथवा प्रचालन कथन के रूप में निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके।

प्रस्तुत शोध की परिकल्पनाएँ इस प्रकार हैं-

1. **उद्योगों एवं व्यवसाय को ऋण एवं अग्रिम प्रदान करने में स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की महत्वपूर्ण भूमिका है-** विभिन्न क्षेत्रों के व्यवसायों तथा उद्योगों को ऋण एवं अग्रिम **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर** द्वारा प्रदान किये गये हैं । विशेषकर राज्य सरकार द्वारा निर्धारित इंडस्ट्रीयल एरिया में स्थापित उद्योगों को विशेष प्राथमिकता प्रदान की गई है।

2. **बैंक के रूप में स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की स्थिति अग्रिम के सम्बन्ध में अन्य बैंकों की तुलना में संतोषजनक है- स्टेट बैंक इन्दौर** ने जो अग्रिम प्रदान किये थे उनकी वसूली लगभग शत-प्रतिशत वर्तमान संदर्भ में कर ली थी, जिसकी स्थिति अन्य राष्ट्रीयकृत बैंकों एवं निजी बैंकों की तुलना में संतोषजनक है।
3. **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा दिए गए अग्रिम की वसूली की स्थिति संतोषजनक है-** अग्रिमों की वसूली के संदर्भ में स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की स्थिति अन्य बैंकों की तुलना में संतोषजनक है। बैंक की वसूली नीति वर्तमान संदर्भ में कारगार सिद्ध हुई है जिसने अपना लक्ष्य प्राप्त किया है।
4. **गैर निष्पादक आस्तियों के प्रबन्धन के सम्बन्ध में स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की स्थिति स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की अन्य सहायक बैंकों की तुलना में संतोषजनक है- स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर** की गैर-निष्पादक आस्तियों के संदर्भ में नीति पूर्णतः स्पष्ट रही है। बैंक का प्रयास रहा है कि गैर-निष्पादक आस्तियों में वृद्धि न हो और उसे न्यूनतम स्तर पर हमेशा रखने का प्रयास किया है। यदि तुलनात्मक रूप से देखा जाये तो**स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर** की गैर-निष्पादक आस्तियाँ अन्य बैंकों की अपेक्षा संतोषजनक स्थिति में हैं।

1.5 अनुसन्धान समंकों का संकलन[COLLECTION OF RESEARCH DATA]

अनुसन्धान की समस्या के समाधान के लिए आँकड़ों के संकलन में जितनी सावधानी रखी जायेगी, प्राप्त निष्कर्ष उतना ही विश्वसनीय तथा वैध होगा। इसके सन्दर्भ में निम्नलिखित दो तथ्यों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है :

(1) अनुसन्धान की सामग्री के स्रोत, और

(2) अनुसन्धान की सामग्री का वर्गीकरण।

अनुसन्धान समंकों के स्त्रोत [SOURCES OF RESEARCH DATA]

अनुसन्धान के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है। सभी विधियों में आँकड़ों का संकलन उस विधि की प्रकृति के अनुसार अलग-अलग विधि से किया जाता है। यदि रूप में विचार किया जाए तो अनुसन्धान की सामग्री दो प्रकार की होती हैः

(1) वह सामग्री जिसे अनुसन्धानकर्ता स्वयं अपने प्रयोग अथवा स्रोत द्वारा प्राप्त करता है। इसे प्राथमिक सामग्री (Primary data) कहते हैं। इस सामग्री को पहली बार प्राप्त किया गया है।

(2) वह सामग्री जिसे अनुसन्धानकर्ता दूसरों के प्रयोग अथवा अनुसन्धान से प्राप्त कर लेता है। इस सामग्री को स्वयं अनुसन्धानकर्ता सामग्री(Secondary data) कहते हैं। इस प्रकार के आँकड़ों का एक बार सांख्यिकीय विश्लेषण हो चुका है और उससे कुछ निष्कर्ष निकाले जा चुके हैं। जब अन्य अनुसन्धानकर्ता इस आँकड़े को अपने अनुसन्धान के लिए प्रयोग में लाता है तो वह

प्राथमिक समंकों के स्त्रोत

प्राथमिक सामग्री के मूल स्त्रोत निम्नलिखित हैंः

(1) व्यक्ति के स्वयं के प्रयोग अथवा सर्वेक्षण -इस प्रकार के आँकड़ों को प्राप्त करने के लिए अनुसन्धानकर्ता स्वयं प्रयोग करता है अथवा सर्वेक्षण करके आँकड़ों को प्राप्त करता है। इसके लिए उसे निरीक्षण तथा प्रयोग में पर्याप्त सावधानी रखनी पड़ती है।

(2) अप्रत्यक्ष अथवा प्रतिनिध्यात्मक सर्वेक्षण - जब सम्पूर्ण जनसंख्या के प्रत्येक व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करना कठिन होता है तो उस जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाला कुछ व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कर आँकड़े प्राप्त कर लेता हैं। इन व्यक्तियों के चयन में इस बात की सावधानी रखनी होती है कि वे व्यक्ति उस समस्या के विभिन्न पक्षों से परिचित हों।

(3) प्रश्नावली तथा परीक्षण-अनुसूची- प्रश्नावली, परीक्षण और अनुसूची का वर्णन 'अनुसन्धान के उपकारण' अध्याय में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। इनके द्वारा भी अनुसन्धानकर्ता प्राथमिक आँकड़ों को प्राप्त करने में सफल होता है। इनको बनाने में सावधानी रखना आवश्यक है।

(4) स्थायी प्रतिवेदनों द्वारा प्राप्त सूचनाएँ -प्राथमिक सामग्री की प्राप्ति हेतु स्थानीय प्रतिवेदन भी महत्वपूर्ण होते हैं। इसके अन्तर्गत वे सूचनाएँ आती हैं जो स्थानीय व्यक्ति अथवा संवाददाताओं द्वारा प्रदान की जाती हैं। इनसे किसी विशेष स्थिति की जानकारी में सहायता मिलती है। इसमें सबसे बड़ा दोष यह होता है कि इनका संकलन व्यक्ति की इच्छानुसार होता है। अतः ये व्यक्तिगत पक्षपात से प्रभावित रहती हैं।

द्वितीयक समंकों के स्त्रोत

द्वितीय सामग्री के स्त्रोत निम्नलिखित हैंः

(1) अभिलेख (Documents) - अप्रत्यक्ष एवं लिखित सामग्री के रूप में अभिलेखों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत अथवा सामूहिक विकास सम्बन्धी जानकारी विद्यमान होती है। दूसरे शब्दों में, एक अभिलेख व्यक्तिगत अथवा सामूहिक विकास की प्रकृति को स्पष्ट करता है। स्थितियों की जटिलता के ऊपर केवल बन्धन है कि इसका लेखक स्थिति को भली प्रकार जानकर उन पर विचार एवं प्रयोग करे। फेस्टिंगर और काज (Festinger and Katz) के अनुसार, " A document, may be described a process of personal or group development, the only limitation on the complexity of the situtions dealt with is that its writer must be able to embrace the situations adequately in his thought and treatment".

अभिलेखों के अन्तर्गत न्यायालयों के अभिलेख, विभिन्न आयोगों की कार्यवाही, समाचार-पत्रों में प्रकाशित लेख आदि आते हैं। अभिलेखों की सामग्री प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों प्रकार की हो सकती है। प्रकाशित सामग्री में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के प्रकाशन, आयोगों एवं समितियों के प्रतिवेदन, अनुसन्धान-लेख आदि, उल्लेखनीय हैं। अप्रकाशित सामग्री के अन्तर्गत सरकारी अथवा गैर-सरकारी, संस्थागत अथवा व्यक्तिगत रूप में किये कार्य और उनका संकलन प्रमुख है।

(2) अभिलेखों के प्रकार - अभिलेख कई प्रकार के हो सकते हैं; यथा (i) व्यक्तिगत पत्र, (ii) जीवन-वृत्त, और (iii) दैनन्दिनी, आदि।

(i) व्यक्तिगत पत्र, (Personal Letters)- भावपूर्ण अभिलेखों में व्यक्तिगत पत्रों का प्रथम स्थान है। इनके द्वारा व्यक्तिगत आन्तरिक भावनाओं को सफलता से ज्ञात किया जा सकता है।

(ii) जीवन-वृत्त (Life Histories) - इनका प्रयोग ऐतिहासिक अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा किया जाता है।

(iii) दैनन्दिनी (Diaries)- इनके द्वारा व्यक्ति की उन सभी गुप्त सूचनाओं को प्राप्त करते हैं जिन्हें वह स्वयं किसी के समक्ष प्रकट नहीं करता, किन्तु शोध-कार्य की दृष्टि से वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री के उपयोग में आवश्यक सतर्कता

उपर्युक्त स्रोतों का उपयोग करने में अनुसन्धानकर्ता को अत्यधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता है अन्यथा वह धोके में पड़ सकता है। इनका प्रयोग करने में निम्न तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है :

(1) आँकड़ों की प्रामाणिकता - प्राप्त आँकड़ों अथवा सामग्री का प्रयोग करने से पूर्व अनुसन्धानकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह उसकी प्रामाणिकता का निश्चय कर ले। यदि वह सामग्री ही अप्रामाणिक है तो प्राप्त निष्कर्ष अवश्य दोषपूर्ण होगा। द्वितीयक सामग्री के प्रयोग में विशेष सावधानी रखनी होगी क्योंकि वह सामग्री अन्य व्यक्तियों द्वारा संग्रह की गयी है। पता नहीं किन परिस्थितियों में, किन कारणों से उन्होंने उसका संग्रह किया था। उसकी विश्वसनीयता क्या है, इसको ज्ञात किये बिना उसका प्रयोग कर लेना भारी भूल होगी।

(2) सूचनाएँ प्रदान करने वाले व्यक्तियों का ज्ञान अनुसन्धानकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह उन व्यक्तियों की क्षमता के विषय में अच्छा ज्ञान रखे जिनके द्वारा वह सूचनाएँ प्राप्त कर रहा है, कहीं ऐसा तो नहीं है कि अपेक्षित सूचना के संग्रह की उनमें क्षमता ही नहीं है।

(3) सामग्री की उपयोगिता का मूल्यांकन - अनुसन्धानकर्ता के लिए आवश्यक है कि प्रयोग करने से पहले वह उस सामग्री की उपयोगिता का मूल्यांकन कर ले। ऐसा भी हो सकता है कि जिस समस्या पर कार्य कर रहे हैं, उसके लिए प्राप्त सामग्री विशेष उपयोगी न हो। अतः उपयोगिता का मूल्यांकन भी आवश्यक है।

(4) लिखित अभिलेखों का उद्देश्य -यह भी ज्ञात कर लेना आवश्यक होगा कि सूचनादाता ने किस उद्देश्य से और किन परिस्थितियों में इन सूचनाओं का संकलन किया है। लिखित सामग्री में लेखक की रुचि, पक्षपात तथा तत्कालीन परिस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ता है। इनके सन्दर्भ में ही सूचनाओं पर विचार करने से सफलता प्राप्त हो सकती है।

अनुसन्धान की सामग्री का वर्गीकरण [CLASSIFICATION OF RESEARCh DATA]

अनुसन्धान की दृष्टि से सामग्री का संकलन होने के पश्चात् उसका वर्गीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आँकड़ों के संग्रह के पश्चात् अनुसन्धान की प्रक्रिया में वर्गीकरण की क्रिया आरम्भ होती है। प्राप्त सामग्री अपने प्रारम्भिक रूप में अस्पष्ट, विस्तृत तथा उलझी हुई होती है। इसे प्रदर्शन के योग्य बनाने तथा विश्लेषण करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए उस सामग्री को एक व्यवस्थित रूप देना

आवश्यक होता है। वर्गीकरण के बिना न तो उसका विश्लेषण किया जा सकता है और न उसके आधार पर कोई वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त हो सकता है। अतः एकत्रित सामग्री को उपयोगिता की दृष्टि से संक्षिप्त करना और उसे एक व्यवस्थित रूप देना आवश्यक है। इस प्रकार, वर्गीकरण सामग्री को व्यवस्थित एवं संक्षिप्त करने की वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत समान एवं असमान लक्षणों के अनुसार सामग्री इस प्रकार विभाजित करते हैं कि समान लक्षणों वाली सामग्री एक वर्ग में तथा असमान लक्षणों वाली सामग्री अन्य वर्गों में आ सके। ऐसा करने से अनुसन्धान की सामग्री में स्पष्टता आ जाती है। कोनर (Conar) के अनुसार वर्गीकरण वस्तुओं (वास्तविक अथवा भावों के अनुसार) को उनके समान गुणों के अनुसार समूहों या वर्गों में व्यवस्थित करने की एक प्रक्रिया है, जो उन लक्षणों की एकता को अभिव्यक्त करती है, जो व्यक्तियों की भिन्नता में स्थित है। डॉ. एलहंस (Elhance) के अनुसार, ''सामग्री को उसकी एकरूपता एवं समानता के अनुसार समूह अथवा वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को पारिभाषिक रूप में वर्गीकरण कहा जाता है।''

वर्गीकरण के गुण

उत्तम वर्गीकरण में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है :

(1) स्पष्टता - वर्गीकरण की सबसे बड़ी विशेषता उसकी स्पष्टता है। विभिन्न वर्गों में विभाजित सामग्री इस प्रकार सुगम एवं स्पष्ट होनी चाहिए कि उसमें सन्देह के लिए कोई स्थान न रहे।

(2) स्थिरता - वर्गीकरण में स्थिरता का होना भी आवश्यक है। यदि उसमें स्थिरता नहीं है, प्रत्येक पुनरावृत्ति में भिन्नता उत्पन्न हो जाती है, तो उसके आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करना असम्भव होगा।

(3) परिवर्तनशीलता -वर्गीकरण के सन्दर्भ में जब हम स्थिरता का उल्लेख करते हैं तो इसका तात्पर्य वर्गीकरण की अपरिवर्तनशीलता से नहीं है। वर्गीकरण के लिए यह आवश्यक है कि इसमें समय एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन एवं समन्वय की क्षमता हो।

1.6 अनुसन्धान की सामग्री का व्यवस्थापन

[TREATMENT OF RESEARCH DATA]

अनुसन्धान की सामग्री के संकलन एवं वर्गीकरण के पश्चात् सामग्री का उचित उपयोग आवश्यक है, जिससे अनुसन्धानकर्ता कुछ उपयोगी निष्कर्ष निकाल सके। इसी उपयोग को व्यवस्थापन कहते हैं।

व्यवस्थापन के साधन

व्यवस्थापन के निम्नलिखित साधन हैं:

1. सारणीयन (Tabulation),

2. सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग (Application of Statistical Devices),

3, सामग्री का विश्लेषण एवं व्याख्या (Analysis and Interpretation of Data) ।

1. सारणीयन- आँकड़ों को स्पष्ट एवं बोधागम्य हेतु उसका सारणीयन अत्यावश्यक है। सारणीयन के द्वारा आँकड़ों में सरलता तथा स्पष्टता आती है तथा वर्णनात्मक तथ्य अधिक व्यवस्थित होकर प्रदर्शन योग्य बन जाते हैं। इसके अन्तर्गत आँकड़ों को विभिन्न स्तम्भों एवं पंक्तियों में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे समझने में सरलता तथा सुविधा होती है। सामान्य रूप में आँकड़ों की स्तम्भों एवं पंक्तियों में व्यवस्थित अवस्था को ही सारणीयन कहते हैं।

सारणीयन के प्रकार - मुख्य रूप से सारणीयन निम्न प्रकार के होते हैं, किन्तु आँकड़ों की प्रकृति के अनुसार इसके और भी प्रकार हो सकते हैं।

(1) एकगुण सारणी - इसके अन्तर्गत एक ही चर अथवा एक ही गुण वाली सामग्री को व्यवस्थित रूप में रखते हैं।

(2) द्विगुण सारणी - यह सारणी किसी चर अथवा पहलू-विशेष के दो परस्पर सम्बन्धित लक्षणों की विशेषताओं को प्रदर्शित करना है तो इस प्रकार की सारणी का प्रयोग करते हैं।

(3) त्रिगुण सारणी -इस प्रकार की सारणी में किसी चर अथवा घटना की तीन विशेषताओं के विषय में जानकारी दी जाती है।

(4) बहुगुण सारणी - इसके अन्तर्गत किसी चर अथवा घटना के अनेक सम्बन्धित गुणों के विषय में सूचनाएँ होती हैं।

सारणीयन का अनुसन्धान की दृष्टि से महत्व -एकत्रित सामग्री को संक्षिप्त एवं सरल स्वरूप प्रदान करने की दृष्टि से अनुसन्धान में यह निम्नलिखित रूपों में विशेष महत्वपूर्ण है:

(1) आँकड़ों की तर्कपूर्ण व्यवस्था - सारणीयन द्वारा किसी चर अथवा घटना के सम्बन्ध में समस्त आँकड़ों को तर्कपूर्ण विधि से व्यवस्थित किया जाता है। जो अनुसन्धान हेतु आवश्यक होता है।

(2) प्राप्त सामग्री का संक्षिप्तीकरण -सारणीयन के पश्चात् अनुसन्धान की सामग्री का रूप संक्षिप्त एवं सुस्पष्ट हो जाता है।

(3) विश्लेषण में सरलता -अनुसन्धान की सामग्री का विश्लेषण तथा निष्कर्ष निकालना उचित सारणीयन द्वारा ही सम्भव है।

(4) समय एवं श्रम की बचत - सारणीयन के पश्चात् प्राप्त सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकालने में समय एवं श्रम की बचत होती है तथा कार्य अधिक उत्तम होता है।

(5) तुलनात्मक अध्ययन में सरलता -सारणीयन के पश्चात् जब अनुसन्धान की सामग्री को विभिन्न स्तम्भों में विभाजित कर लेते हैं तो सामग्री के समान लक्षण स्वयं स्पष्ट हो जाते हैं। इसके आधार पर तुलनात्मक अध्ययन सरलता से हो सकता है।

2. सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग -आँकड़ों के व्यवस्थापन का दूसरा महत्वपूर्ण पद उन पर सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग है। इसके सम्बन्ध में विस्तृत विवरण 'सांख्यिकीय' शीर्षक अध्ययन में दिया गया है।

3. आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या -आँकड़ों के व्यवस्थापन का तृतीय महत्वपूर्ण अंग उनका विश्लेषण तथा व्याख्या करना है। अनुसन्धान में आँकड़ों के संकलन, सारणीयन तथा सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग के पश्चात् प्राप्त निष्कर्षों का विश्लेषण एवं उनकी व्याख्या का महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रक्रिया में प्राप्त आँकड़ों को इस प्रकार व्यवस्थित करते हैं कि वह समस्या के सम्बन्ध में वांछित परिणामों को प्रस्तुत कर सके। डब्ल्यू. कुक(W. Cook) के अनुसार, ''वैज्ञानिक विश्लेषण अध्ययन के तथ्यों, परिणामों तथा वैज्ञानिक ज्ञान के सम्बन्धों की खोज करता है।''

आँकड़ों का विश्लेषण, एक वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँचता है तथा परिकल्पना के परीक्षण में सहायक होता है। विश्लेषण के अभाव में प्राप्त सामग्री की कोई उपयोगिता नहीं होती। समस्या के सम्बन्ध में निश्चित ज्ञान की प्राप्ति के लिए सामग्री का विश्लेषण किया जाना आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। यहाँ पर हमने द्वितीयक स्रोतों के रूप में **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर** का वार्षिक प्रतिवेदन तथा आर.बी.आई. का वार्षिक प्रतिवेदन तथा भारतीय अर्थव्यवस्था एवं बैंकिंग पर आधारित विभिन्न लेखकों की पुस्तकों को संदर्भित किया है। साथ ही द्वितीयक स्रोत के रूप में विभिन्न वेबसाइट का उपयोग भी किया है।

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मुख्यतः द्वितीयक समंकों पर आधारित है।

   प्रस्तुत शोध की प्रबन्ध की प्रविधि निम्नानुसार निर्धारित की गई है-

(अ) ऐतिहासिक अध्ययन विधि-इसके अन्तर्गत स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर के वर्ष 2000-01 से वर्ष 2006-07 तक के प्रकाशित लेखों (वार्षिक रिपोर्ट) तथा उनकी प्रकाशित नीतियों का अध्ययन किया जाएगा। वार्षिक रिपोर्ट से लिए गए समंकों को अध्ययन की आवश्यकतानुसार वर्गीकृत एवं सारणीकृत किया जाएगा।

(ब) विश्लेषण विधि- इसके अन्तर्गत स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर के ऋण, अग्रिम तथा गैर निष्पादक आस्तियों का बिन्दुवार प्रतिशत, औसत तथा अनुपात के आधार पर विश्लेषण किया जाएगा।

(स) सांख्यिकीय अध्ययन के लिए समानांतर माध्य एवं प्रवृत्ति विश्लेषण विधि का प्रयोग किया जाएगा।

(द) समंकों को तालिकाओं एवं रेखाचित्र के माध्यम से बोधगम्य एवं सरलीकृत करने के उद्देश्य से उचित प्रारूप में प्रस्तुत किया जाएगा।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के अंतर्गत सांख्यिकीय प्राविधियों का उपयोग किया गया है। इनमें मुख्यतः

- मध्य मान की गणना
- मानक विचलन का प्रयोग
- सहसंबंध गुणांक ज्ञात करना
- प्रस्तुत शोध प्रबंध द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है जिसके अंतर्गत अध्ययनकर्ता आँकड़ों का स्वयं संकलन नहीं करता बल्कि उनका अपनी अनुसंधान समस्या के विश्लेषण तथा विवेचना में उपयोग करता है। वास्तव में, ऐसे आँकड़े किसी अन्य व्यक्ति, एजेंसी व संस्था द्वारा प्रायः अपने निजी उपयोग के लिए संकलित किये जाते हैं। इससे सम्बन्धित व्यक्ति एजेंसी व संस्था का स्वरूप सरकारी, अर्द्ध सरकारी तथा निजी हो सकता है। इस प्रकार के आँकड़े विद्वानों व वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किये गये संस्करण तथा अप्रकाशित प्रतिवेदनों तथा प्रकाशित पत्रिकाओं व पुस्तकों में उपलब्ध होते हैं।**यहाँ पर प्रस्तुत शोध में हमने** स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर **के वार्षिक प्रतिवेदनों तथा रिपोर्टों व जरनलों का उपयोग द्वितीयक आँकड़ों के स्रोत के रूप में किया है।**

1.7. शोध का क्षेत्र एवं सीमाएँ

प्रस्तुत शोध **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर** की गैर-निष्पादक आस्तियों के प्रबन्ध एवं उनके विश्लेषण पर आधारित है। अतः इसका विषय क्षेत्र बैंक की गैर-निष्पादक आस्तियों के अध्ययन से है।

1. **प्रस्तुत शोध** प्रबन्ध स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर **की गैर निष्पादक आस्तियों के प्रबन्धन, ऋण तथा अग्रिम तक सीमित है**- इसके अंतर्गत स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की गैर-निष्पादक आस्तियों का प्रबंधन कैसे किया जाता है उसका विस्तृत विवरण विश्लेषण सहित किया गया है। इसमें ऋण तथा अग्रिमों की अवधारणा को भी स्पष्ट किया गया है। साथ ही ऋण व अग्रिमों के अकुशल प्रबंधन से बैंक की गैर-निष्पादक आस्तियों में वृद्धि कैसे होती है इसको भी स्पष्ट किया गया है।
2. **प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मुख्यतः द्वितीयक समंकों पर आधारित है। अतः यदि इन समंकों में कुछ दोष रहे होंगे, तो उसका प्रभाव निश्चित रूप से शोध प्रबन्ध पर पड़ेगा**- यह शोध प्रबंध पूर्ण करने में द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया है- द्वितीयक आँकड़ों के रूप में हमने स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की वार्षिक रिपोर्टों एवं जरनलों तथा विभिन्न लेखों के प्रकाशन से अध्ययन सामग्री का उपयोग किया गया है।
3. **स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के अन्य सहायक बैंकों तथा अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों का अध्ययन प्रस्तावित शोध प्रबन्ध में यथास्थान उल्लेखित रहेगा, किन्तु उनका विस्तृत विश्लेषण नहीं किया जाएगा**-प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सिर्फ स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की गैर-निष्पादन आस्तियों और ऋणों तथा अग्रिमों का विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण में अन्य सार्वजनिक बैंकों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया गया है। आवश्यक होने पर इन सार्वजनिक बैंकों का उल्लेख सीमित रखा गया है।
5. **प्रस्तुत शोध प्रबंध वर्ष 2000-01 से 2006-07 तक सीमित है**- स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की गैर-निष्पादक आस्तियों तथा ऋण व अग्रिमों का विस्तृत विश्लेषण संदर्भ वर्ष 2000-01 से 2006-07 तक ही किया गया है।

1.8. अध्ययन की रूपरेखा

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सम्पूर्ण अध्ययन आठ अध्यायों में किया जाना है, जो इस प्रकार है-

अध्याय प्रथम- अध्याय प्रथम में विषय प्रवेश व प्रस्तावना, शोध के उद्देश्य, शोध की परिकल्पनाएँ, शोध का क्षेत्र व सीमाएँ, शोध प्रविधि एवं सम्भावित योगदान को शामिल किया गया है।

अध्याय द्वितीय- अध्याय द्वितीय में बैंकिंग उद्योग के वर्तमान परिदृश्य के अन्तर्गत बैंक की उत्पत्ति व अर्थ, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना व राष्ट्रीयकरण, भारतीय बैंकिंग एक्ट 1949 की स्थापना व बैंकों का राष्ट्रीयकरण, आर्थिक उदारीकरण, बैंकों का सुधार तथा बैंकिंग क्षेत्रों के समक्ष वर्तमान चुनौतियों को शामिल किया गया है।

अध्याय तृतीय- अध्याय तृतीय में ऋण तथा अग्रिम की अवधारणा के अन्तर्गत ऋण तथा अग्रिम का आशय एवं स्वरूप, ऋण तथा अग्रिम का उद्देश्य व महत्व, ऋण तथा अग्रिम के प्रकार तथा विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों के लिए वित्त की आवश्यकता तथा वित्त प्राप्ति के साधन को शामिल किया गया है।

अध्याय चतुर्थ- अध्याय चतुर्थ में स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर के वर्तमान परिदृश्य एवं भविष्य की सम्भावनाओं पर चर्चा होगी एवं स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा प्रदान किए गए ऋण एवं अग्रिम का अध्ययन होगा।

अध्याय पंचम- इस अध्याय में स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा प्रदान किए गए ऋण एवं अग्रिम तथा उनकी वसूली के विश्लेषणात्मक अध्ययन को शामिल किया गया है, जिसमें ऋण एवं अग्रिम की वसूली से आशय, विभिन्न अग्रिमों की राशि, स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा अग्रिम राशि की वसूली का अध्ययन तथा निम्न वसूली के कारण व न्यायिक प्रक्रिया को शामिल किया गया है।

अध्याय षष्ठम- इस अध्याय में **स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर** की गैर निष्पादक आस्तियों की स्थिति का आकलन किया जाना प्रस्तावित है।

अध्याय सप्तम- सप्तम अध्याय में गैर निष्पादक आस्तियों के प्रबन्धन का विश्लेषणात्मक अध्ययन के अन्तर्गत गैर निष्पादक आस्तियों से आशय व कारण तथा रिजर्व बैंक की नीति व स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की नीति का अध्ययन व स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की गैर निष्पादक आस्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन शामिल किया गया है।

अध्याय अष्ठम- इस अध्याय में शोध के निष्कर्ष, परिकल्पनाओं की कसौटी एवं रचनात्मक सुझाव समाहित किए जाएँगे।

1.9. संभावित योगदान

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के महत्वपूर्ण सहायक बैंक स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर की गैर निष्पादक आस्तियों के प्रबन्धन के अध्ययन का एक अनूठा प्रयास है। शोधकर्ता का विश्वास है कि प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम से सार्थक सुझाव दिये जाएँगे तथा देश के बैंकिंग क्षेत्र को गैर निष्पादक आस्तियों के समक्ष आने वाली कठिनाइयों तथा चुनौतियों का सामना करने में मदद मिलेगी। शोधकर्ता को यह भी विश्वास है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में किए गए सुझाव न केवल बैंक अधिकारियों, बल्कि नीति निर्धारकों के लिए भी पथ प्रदर्शन का कार्य करेंगे।

❍❍❍